भारत रत्न
पूर्व प्रधानमंत्री
अटल बिहारी
वाजपेयी की
100वीं वर्षगांठ

सुजान चिनॉय

राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वभौमिकता और राजनीतिक कौशल

संप्रभुता और अखंडता के प्रति अटल बिहारी वाजपेयी की प्रतिबद्धता एनडीए-2 के मौजूदा फैसलों में भी परिलक्षित होती है। उन्होंने देश की आर्थिक वृद्धि की दर बढ़ने से पहले ही भारत को महाशक्ति बनाने का स्वप्न संजोया था।

देश पूर्व-प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की 100वीं शताब्दी मना रहा है। वे महान व्यक्तित्व के स्वामी और कुशाग्र राजनेता थे और उन्होंने कई दशकों तक भारतीय राजनीति को सत्ता में और सत्ता से बाहर रहते हुए प्रभावित किया। उनमें बुद्धिजीवी, कवि, दार्शनिक और राजनेता के गुणों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उनसे पूछा जाता तो वे स्वयं को कवि बताना ही पसंद करते थे। उन्होंने अपने दृष्टिकोण और सोच पर कभी राजनीति का रंग नहीं चढ़ने दिया। उनकी नीतियों का मुख्य आधार राष्ट्रीय हित और जनकल्याण की भावना थी। वे अत्यन्त प्रभावी वक्ता थे और अपने शब्दों के चमत्कार से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। जब भी वो किसी से असहमत होते थे तो उनकी आलोचना किसी विचार, नीति या सोच के प्रति होती थी, किसी व्यक्ति के प्रति कभी नहीं। उनके विपक्षी भी उनके इस गुण की प्रशंसा करते थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू युवा अटल बिहारी वाजपेयी की प्रतिभा को काफी पहले समझ चुके थे और उन्होंने कहा था कि वे एक ऐसे नेता हैं जिनकी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

वाजपेयी का राजनीतिक और संसदीय जीवन 1950 के दशक में शुरू हुआ और पांच दशकों तक चला। वे भारतीय राजनीति के सबसे ज़्यादा सम्मानित और भरोसेमंद नेताओं में से थे। वे दस बार लोकसभा और दो बार राज्यसभा के सदस्य बने।

वाजपेयी पहली बार 1957 में उत्तर प्रदेश के बलरामपुर से भारतीय जनसंघ के टिकट पर लोकसभा के लिए चुने गए जो बाद

लेखक मनोहर पर्रिकर रक्षा अध्ययन और विश्लेषण संस्थान के महानिदेशक तथा दिवंगत प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की जन्म शताब्दी मनाने के लिए संस्कृति मंत्रालय द्वारा गठित उच्च स्तरीय समिति के सदस्य हैं। ईमेल : dg.idsa@nic.in

अगस्त 1971 में दिल्ली में एक रैली के दौरान, जनसंघ के अध्यक्ष के रूप में वाजपेयी ने भारत सरकार से बांग्लादेश को तुरंत मान्यता देने का आह्वान किया

में चलकर भारतीय जनता पार्टी के रूप में विकसित हुई। वाजपेयी भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों में विशेष रुचि रखते थे। देश की प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता को वे अत्यधिक महत्व देते थे। उन्होंने कई बार प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति की आलोचना की और इसे पाकिस्तान के प्रति ज़्यादा झुकाव वाली तथा ढुलमुल बताया, खासकर कश्मीर और तिब्बत से जुड़े मामलों तथा चीन के बीच सीमा-विवाद के बारे में।

वे 1977 और 1979 के बीच विदेश मंत्री (ईएएम) रहने के अलावा 1957 से चालीस वर्ष तक विपक्ष के ही सांसद रहे।

रक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा और विदेश नीति के बारे में उनके सार्वजनिक भाषणों में से कुछ ही चुने हुए अंश कटु कहे जा सकते हैं।

भारत की क्षेत्रीय अखंडता

लोकसभा में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर 15 मई, 1957 को हुई चर्चा में वाजपेयी ने नेहरू की कश्मीर नीति की आलोचना की थी। 1957 से 1967 की अवधि में लोकसभा सदस्य और राज्यसभा सदस्य रहने के साथ ही वे भारतीय जनसंघ के संसदीय प्रवक्ता रहे। इस दौरान वाजपेयी ने पाकिस्तान से जुड़े मुद्दे ठीक से न संभाल पाने के कारण नेहरू की नीति की कई भाषणों में आलोचना की, जिनमें 1965 के भारत-पाक युद्ध और अब तक चले आ रहे कश्मीर मुद्दे पर नेहरू सरकार का रुख भी शामिल है। उन्होंने पाकिस्तान की कार्रवाई को आक्रामक विस्तारवाद की संज्ञा दी। उन्होंने कश्मीर के पूरी तरह भारत में विलय का समर्थन किया और संयुक्त राष्ट्र की मध्यस्थता में सुझाए समाधानों को अस्वीकार करते हुए कहा था कि इसमें कश्मीर के एक भाग पर पाकिस्तान के कब्ज़े को सही ठहराया जा रहा है जिसे अब पी.ओ.के. या पाकिस्तान के कब्ज़े वाला जम्मू-कश्मीर कहा जाता है।

इसी प्रकार 1950 के बाद वाले दशकों में सीमा पर चीन के अतिक्रमण पर उन्होंने सरकार से बार-बार अनुरोध किया कि भारतीय सैन्य क्षमता बढ़ाई जाए और चीन की हरकतों पर गंभीरता से ध्यान दिया जाए। अक्साई चीन (जीए19) के रास्ते जिनजियांग को तिब्बत से जोड़ने वाली सड़क बनाने की चीन की कार्रवाई को गंभीर बताते हुए उन्होंने सरकार से आग्रह किया था कि कब्ज़ाए गए क्षेत्र को वापिस लेने का प्रयास किया जाना चाहिए।

जून, 1962 में चीन के साथ तनाव बढ़ने पर वाजपेयी ने चीन नीति को 'अकारण ही अवास्तविक और अप्रभावी' बताया था। उन्होंने सुझाव दिया था कि चीन नीति को वास्तविकता पर आधारित बनाने के लिए सबसे पहले भारत को चीन से राजनयिक संबंध तोड़ लेने चाहिए तथा दूसरे यह कि चीन से जुड़ी सभी नीतियों और कार्यक्रमों की पहली शर्त खोए हुए भू-क्षेत्र की जल्दी से जल्दी

वापसी रखी जाए। तीसरे, अंतरराष्ट्रीय मंचों और भारत के पड़ोस में चीन की विस्तारवादी नीतियों का पर्दाफाश किया जाए।

नेहरू सरकार की उस समय की स्थिति के विपरीत वाजपेयी भारत की सीमाओं की रक्षा के लिए रक्षा तैयारियाँ बढ़ाने के पक्ष में थे। उन्होंने ताइवान के साथ राजनयिक संबंध बनाने का सुझाव भी दिया जो स्वयं को चीनी गणतंत्र (आरओसी) कहता है और समूचे चीन का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता है।

जैसा हमने देखा, वाजपेयी देश की क्षेत्रीय अखंडता पर किसी भी समझौते का विरोध करते थे। पाकिस्तान और चीन की ओर से हुए आक्रमणों के दौरान उन्होंने जिस मज़बूती से फैसले किए उससे यह सिद्ध हो गया। 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान उन्होंने राज्यसभा में जो भाषण दिए उनमें भारतीय क्षेत्र और खासकर कश्मीर की मज़बूत रक्षा पर ज़ोर दिया गया था। पाकिस्तानी आक्रमण का और निर्णायक ढंग से जवाब देने के लिए लाल बहादुर शास्त्री की सरकार पर ज़ोर डालने के साथ ही वाजपेयी ने विपक्षी दलों से भी 1965 के युद्ध में सरकार को पूरा समर्थन देने का अनुरोध किया था।

तिब्बत और ताइवान

तिब्बत के मुद्दे पर उन्होंने भारत सरकार से तिब्बतियों को सक्रिय समर्थन देने को कहा और 1959 में साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ भारत के संघर्ष का उल्लेख किया। 1959 में, जब चीन के कब्ज़े के विरोध में दलाई लामा ने भारत में शरण मांगी थी और आंतरिक खाम्पा विद्रोह पूरे ज़ोरों पर था तो वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र में तिब्बत पर बहस के दौरान भारत की चुप्पी की संसद में आलोचना की थी। भारत की सुरक्षा में तिब्बत के महत्व पर बल देते हुए उन्होंने सरकार से आग्रह किया था कि तिब्बत पर चीन के दावे को न माना जाए। पर इससे कोई फायदा नहीं हुआ क्योंकि अक्तूबर, 1950 में तिब्बत पर चीन की पी.एल.ए. का कब्ज़ा होने के बाद से ही बड़ी शक्तियों ने तिब्बत के हितों का कभी समर्थन नहीं किया।

वाजपेयी ने यह उसी समय समझ लिया था कि ताइवान (कथित चीन गणतंत्र) की जगह चीन लोकतांत्रिक गणराज्य को संयुक्त राष्ट्र का स्थायी सदस्य बनाने के क्या दुष्परिणाम होंगे। उन्होंने सरकार की स्थिति की आलोचना करते हुए कहा था कि संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता मिलने से चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य की आक्रामक प्रवृत्तियाँ बढ़ सकती हैं और उन्होंने संकेत दिया था कि बिजिंग वीटो इस्तेमाल करके भारत की वस्तुपरक नीति को रोकने के लिए राजनयिक प्रभाव का गलत फायदा उठा सकता है तथा भारत के बारे में गलत धारणाएँ फैला सकता है।

कहा जा सकता है कि वाजपेयी की आशंकाएं सही थीं क्योंकि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में ताइवान की जगह चीन के आ जाने के बाद के दशकों की घटनाओं से ये सच हो गईं। उसके बाद से चीन ने नव-स्वतंत्र बांग्लादेश को मान्यता देने में देरी लगाई और फिर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के प्रस्तावों का हवाला देकर उसने जम्मू-कश्मीर को अपना फैसला स्वयं करने के तर्क का समर्थन किया। चीन को मिले वीटो अधिकार से भारत के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव ही पड़ा है।

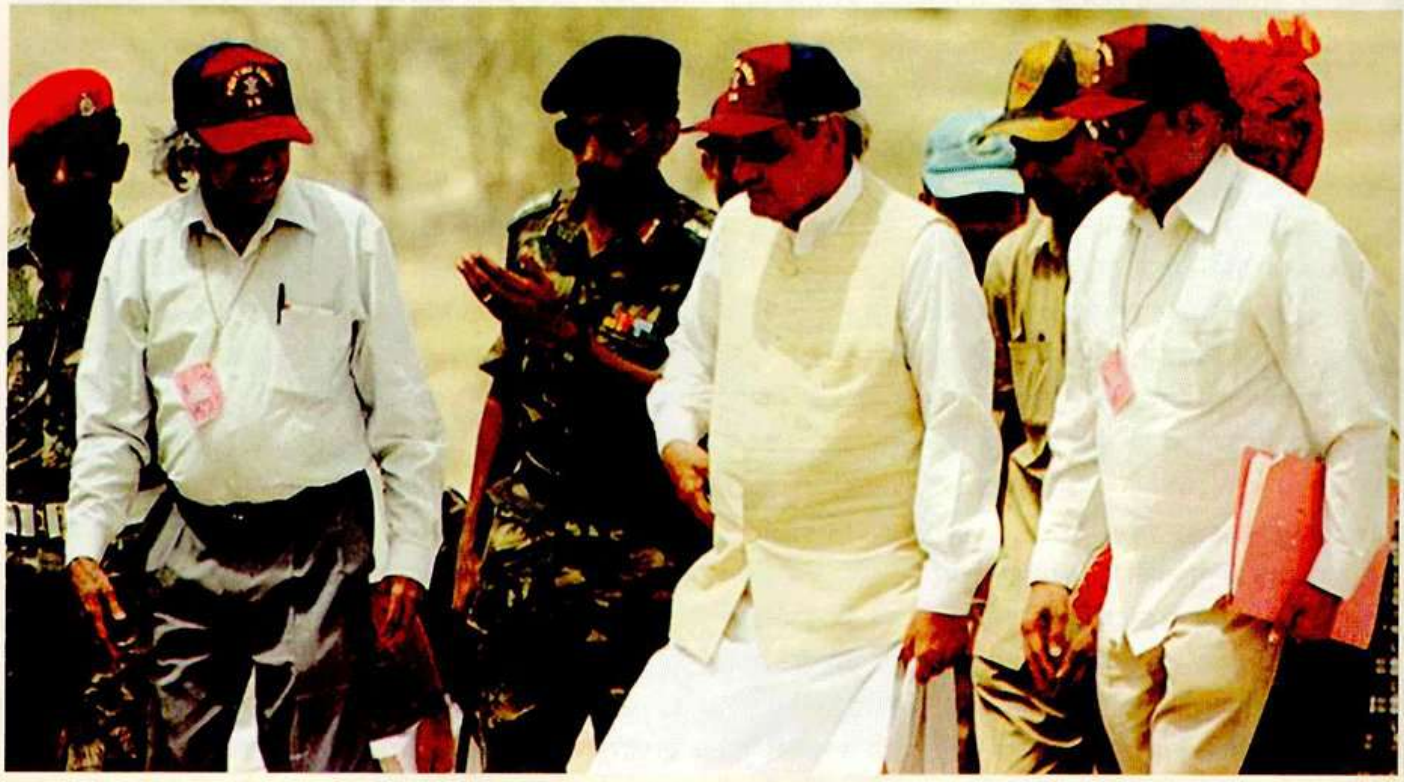

पोखरण परीक्षण स्थल पर तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, तत्कालीन डीआरडीओ सचिव और प्रधानमंत्री के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के साथ, जो बाद में भारत के 11वें राष्ट्रपति बने

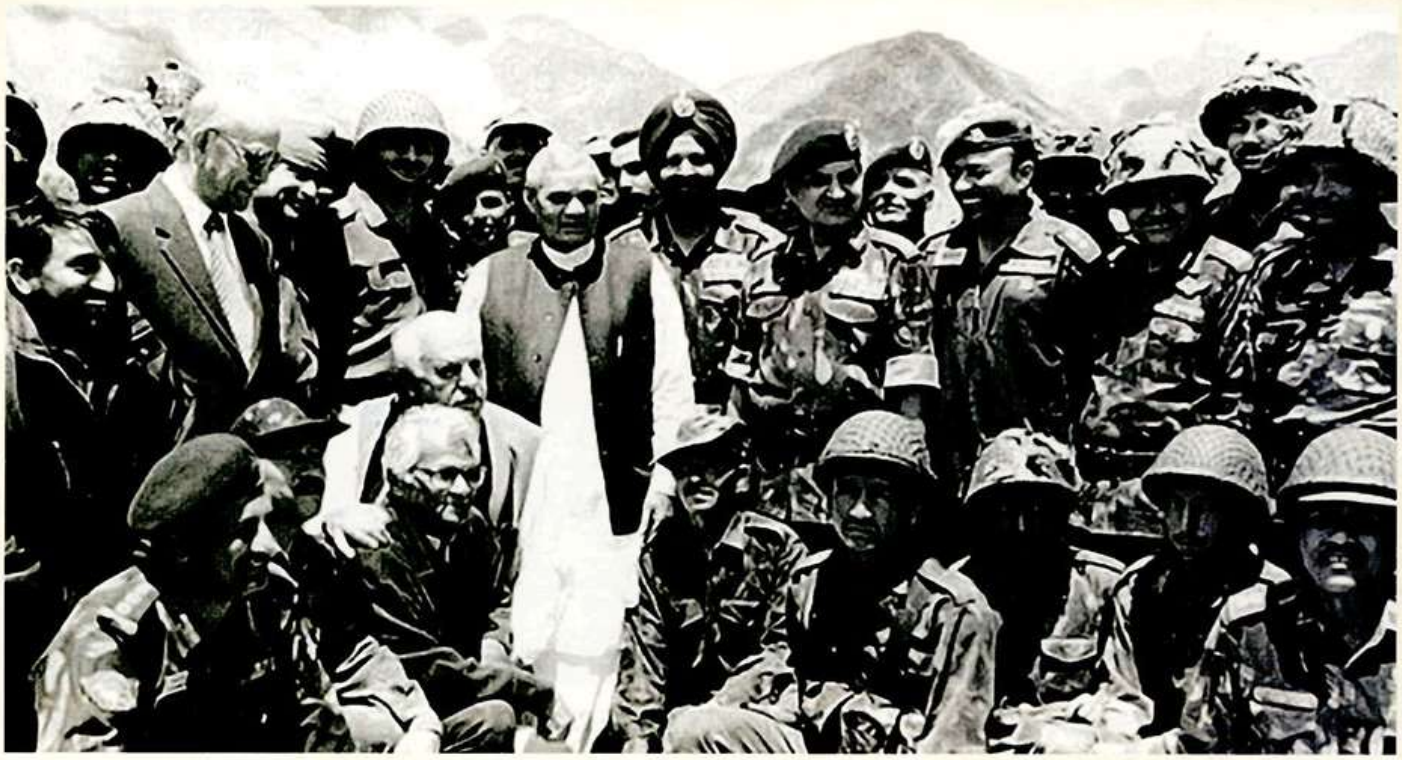

कारगिल संघर्ष के दौरान तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडीस (बाएं से तीसरे), जम्मू और कश्मीर के राज्यपाल गिरीश चंद्र 'गैरी' सक्सेना (बाएं से दूसरे) और सेना प्रमुख जनरल वेद प्रकाश मलिक (दाएं से चौथे) के साथ अग्रिम मोर्चे पर तैनात सैनिकों से मिले थे।

कुछ समय पहले का उदाहरण है– चीन ने पाकिस्तान स्थित आतंकी नेटवर्कों और आतंकियों की सूची बनाने में अवरुद्ध उत्पन्न किया तथा हाल के पहलगाम आतंकी हमले की निन्दा के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में लाए 25 अप्रैल, 2025 के प्रस्ताव को भी (द रेजिस्टेंट फ्रंट) टीआरएफ ने कमज़ोर कर दिया।

इस तरह साफ हो जाता है कि सांसद बनने के शुरूआती वर्षों में वाजपेयी कट्टर यर्थाथवादी थे पर बाद में वे अधिक व्यावहारिक होते गए हालांकि, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता की धारणाओं का उन्होंने त्याग नहीं किया।

अधूरे राष्ट्रीय कार्य का निर्माण

दूसरा पहलू यह है कि भारत को परमाणु-शस्त्र संपन्न देश बनाने का अपना अधूरा स्वप्न पूरा करने में उन्होंने किंचित भी देरी नहीं की। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा मजबूत करने के लिए परमाणु हथियार बनाने चाहिए। उनका मानना था कि शांति के लिए शक्ति होना आवश्यक है।

वाजपेयी का लम्बे समय से यही सपना था कि भारत परमाणु संपन्न देश बने। 22 दिसम्बर, 1964 को राज्यसभा में चर्चा के दौरान उसी वर्ष अक्टूबर में चीन द्वारा किए परमाणु परीक्षणों का मुद्दा उठाया था। उन्होंने सरकार से अनुरोध किया था कि भारत में परमाणु बम बनाने के मुद्दे पर खुले मन से विचार किया जाए। उन्होंने जापान पर अमेरिका के परमाणु बम गिराने का उदाहरण देते हुए कहा था कि यदि जापान के पास भी परमाणु बम होता तो अमेरिका की इतनी हिम्मत नहीं हो सकती थी कि उस पर एटम बम गिरा सकता।

वाजपेयी के अनुसार परमाणु तकनीक रखना आत्मनिर्भरता के लिए बेहद जरूरी है। उनका पक्का मानना था कि परमाणु हथियारों से भारत की सामरिक स्वायत्तता और प्रतिरोधक क्षमता निश्चित रूप से बढ़ेगी।

वाजपेयी ने पहले ही सतर्क किया था कि चीन के पास परमाणु बम आ जाने से इस क्षेत्र का संतुलन भारत के हित में नहीं रहेगा। इसी कारण विपक्ष में होते हुए भी वाजपेयी ने 18 मई, 1974 को भारत द्वारा शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट का स्वागत किया क्योंकि वे भली प्रकार समझते थे कि यह राष्ट्र के हित में था।

डॉ एपीजे अब्दुल कलाम के अनुसार तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हा राव ने मई, 1996 में उन्हें परमाणु परीक्षणों के लिए तैयार रहने को कहा थां। लेकिन, 1996 में राष्ट्रीय चुनावों में कांग्रेस सरकार गिर जाने के कारण राव ने डॉ. कलाम से कहा कि वे पूरा विवरण आने वाले प्रधानमंत्री वाजपेयी को बता दें। वाजपेयी की मीडिया सलाहकार अशोक टंडन की पुस्तक 'द रिवर्स स्विंग' के अनुसार 1996 मे वाजपेयी के शपथ ग्रहण समारोह में राव ने चुपचाप वाजपेयी को एक 'चिट' सौंपी थी जिसमें लिखा था, ''मेरा अधूरा कार्य पूरा करने का यही समय है।"

सभी जानते हैं कि प्रधानमंत्री रहते समय पीवी नरसिम्हा राव ने परमाणु परीक्षण करना लगभग तय कर लिया था परन्तु अमेरिका

मार्च 2000 में राष्ट्रपति भवन में औपचारिक स्वागत के बाद तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन (बीच में), तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन (सबसे बाएं) और तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी (सबसे दाएं) के साथ

के दबाव के कारण उन्हें रुकना पड़ा। फिर 1996 में बनी वाजपेयी सरकार सिर्फ 13 दिन ही चल पाई। इस कारण भारत को कुछ और समय तक इंतजार करना पड़ा था।

1998 में, भारत को कठोर बाहरी परिवेश का सामना करना पड़ा था। मिसाइल बनाने के लिए चीन-पाकिस्तान की मिलीभगत और परमाणु क्षेत्र में उनकी साज़िशें पूरी तेज़ी पर थीं और यह मानने के स्पष्ट पर्याप्त कारण थे कि अमेरिका इन गतिविधियों की जानबूझकर अनदेखी कर रहा था। ऐसी परिस्थिति में वाजपेयी ने उसी वर्ष दूसरी बार सत्ता में आने पर निर्णायक कार्रवाई का फैसला ले लिया। भारत ने जल्दी-जल्दी 11 मई, 1998 को तीन तथा 13 मई, 1998 को दो भूमिगत परमाणु परीक्षण कर लिए। वाजपेयी ने घोषणा की कि भारत ने उन्हीं नीति गत सिद्धातों के आधार पर कार्रवाई की जिनका वह पांच दशकों की राष्ट्रीय सहमति के तहत पालन करता आ रहा था। उन्होंने बड़े गौरव के साथ कहा कि यह वास्तव में पिछली सरकारों द्वारा अपनाई नीति को आगे बढ़ाने के प्रयास में की गई कार्रवाई है। फिर उन्होंने यह विश्वास भी दिलाया कि परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी) और व्यापक परीक्षण निषेध संधि (सीटीबीटी) पर वैश्विक दबाव में आकर वह हस्ताक्षर नहीं करेगा।

व्यावहारिक यथार्थवादी

वाजपेयी की व्यावहारिक यथार्थवाद पर आधारित सोच भी वर्षों तक उनके राजनीतिक जीवन का प्रमुख अंग बनी रही। जहां 1998 में, परमाणु परीक्षणों का फैसला वास्तविक सुरक्षा कारणों से लिया गया था वहीं भविष्य में ऐसे परीक्षणों पर स्वतः रोक लगाने का उनका फैसला व्यावहारिकता पर आधारित था।

इससे पहले, 1971 के युद्ध के दौरान वाजपेयी ने दलगत राजनीति से ऊपर उठकर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की तत्कालीन सरकार के प्रति समर्थन का संकल्प व्यक्त किया था। इससे पता चलता है कि वे व्यावहारिक राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय एकता को प्राथमिकता देने के अपने संकल्प को विपक्ष की राजनीति से ज़्यादा महत्व देते थे।

1977 में मोरारजी देसाई की जनता पार्टी सरकार में भी विदेश मंत्री रहने के दौरान यथार्थवादी वाजपेयी ने चीन और पाकिस्तान के प्रति अपने कठोर रवैये को हल्का करके व्यावहारिक बना लिया था। तभी तो राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दों पर अपने दृढ़ रुख के बावजूद ये दोनों देश उनके शांति प्रयासों को आज भी मानते हैं।

1978 में, वाजपेयी भारत के पहले ऐसे विदेश मंत्री थे, जो दस वर्ष से भी ज़्यादा समय में पाकिस्तान यात्रा पर गए और जनरल ज़िया-उल-हक़ के सैनिक शासन के दौरान ही उनसे मुलाकात की। उनके एजेंडे में संबंधों को सामान्य बनाना पहली प्राथमिकता थी। उन्होंने व्यापार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और लोगों के बीच संबंध बढ़ाने पर बल दिया तथा दिल्ली और लाहौर के बीच प्रसिद्ध बस सेवा शुरू करने का सुझाव रखा-उनका यह स्वप्न दो दशक बाद स्वयं उनके प्रधानमंत्री काल में पूरा हुआ।

विदेश मंत्री के रूप में उन्होंने चीन के साथ राजनयिक संबंधों को सामान्य बनाने का भी स्वागत किया। देश के उत्तरी पड़ोसी देश से उच्च राजनयिक संबंध फिर शुरू करने के प्रयास में वाजपेयी ने फरवरी, 1979 में चीन की यात्रा की थी।

इस यात्रा के दौरान दोनों पक्षों ने सीमा विवाद के समाधान के लिए बातचीत जारी रखते हुए द्विपक्षीय संबंधों को विकसित करने पर सहमति व्यक्त की।

हालांकि वाजपेयी ने कश्मीर मुद्दे पर पाकिस्तान को और नागा विद्रोहियों को चीन के समर्थन जैसे गंभीर सुरक्षा मुद्दे भी चीनी नेताओं के सामने उठाए पर उन्होंने व्यावहारिक और आपसी हित के लिए सहयोग बढ़ाकर चीन के साथ रिश्ते सुधारने का प्रयास भी किया।

1977 से 1979 के दौरान उनके विदेश मंत्री रहने के दौर में आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच संतुलन रखने का वाजपेयी ब्रांड सामने आया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि पड़ोसी देश एक-दूसरे का भूगोल तो नहीं बदल सकते, इसलिए उन्होंने मुद्दों को बातचीत से सुलझाने पर बल दिया। उनके प्रधानमंत्री बनने के बाद इसी सिद्धान्त को आगे बढ़ाया गया। 1998 से 2004 के बीच प्रधानमंत्री रहने के दौरान वाजपेयी ने पाकिस्तान और चीन से संबंध सामान्य बनाने की दिशा में अनेक पहलें कीं।

पाकिस्तान और चीन तक पहुंच

1998 में, पोखरण-2 परमाणु परीक्षणों के बाद वाजपेयी ने पाकिस्तान से सामान्य संबंध विकसित करने की पहल की। 1999 में लाहौर बस यात्रा के लिए जब वे स्वयं पाकिस्तान तक यात्रा करके गए तो वहां के तत्कालीन प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ के साथ लाहौर संधि पर हस्ताक्षर किए थे। इसके तहत दोनों देश शिमला समझौता पूरी तरह लागू करने तथा परमाणु हथियारों को अचानक या अनधिकृत इस्तेमाल न करने और जम्मू-कश्मीर के मुद्दे सहित सभी समस्याओं को हल करने पर सहमत हुए थे।

दुःख की बात है कि 1999 में, भारत के जम्मू-कश्मीर राज्य के कारगिल क्षेत्र में हमला करके पाकिस्तान ने इस संधि का उल्लंघन कर दिया। वाजपेयी ने इसका निर्णायक जवाब दिया तथा सेना को नियंत्रण रेखा पार किए बिना अपने क्षेत्र खाली कराने का निर्देश दिया। इस फैसले में सीमित कार्रवाई दिखाई दी थी। 2001 में, भारत की संसद पर आतंकी हमले के बाद वाजपेयी ने भारत की सैन्य शक्ति को तैयारी का आदेश दिया और 2001-2002 में चलाए ऑपरेशन पराक्रम के तहत हुए सैनिक जमावड़े से परमाणु संपन्न पड़ोसी घुटनों पर आ गया। उस वक्त भी वाजपेयी के संयम ने ही भारत के हाथ रोक दिए जिससे युद्ध टल गया था।

जहाँ तक चीन की बात है, वे जून, 2003 में प्रधानमंत्री बनने के बाद दोबारा चीन गए। चीन ने काफी समय से सिक्किम को अलग देश बनाने की नीति अपना रखी थी। 1975 में हुए सिक्किम के भारत में विलय को उसने कभी विधिवत स्वीकार नहीं किया। अपने प्रधानमंत्री काल में वाजपेयी ने चीन को इस बात पर राज़ी किया कि वह सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग माने तथा अपने नक्शे उसी के अनुसार सुधार कर छापे। इसमें कुछ वक्त लगा। प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ ने 2005 में अपनी भारत यात्रा के दौरान बोला कि चीन 'सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग मानता है' और भारत-चीन संबंधों में सिक्किम अब कोई रुकावट नहीं रह गया था। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने संसद में घोषणा की कि दोनों पक्षों ने जिस संयुक्त घोषणा पर हस्ताक्षर किए हैं उसमें साफ तौर पर लिखा है कि 'सिक्किम भारत गणराज्य का अंग है।' उन्होंने सदन को सूचित किया कि चीनी पक्ष ने विधिवत एक नया नक्शा सौंपा है जिसमें सिक्किम को भारत की अंतरराष्ट्रीय सीमा में दिखाया गया है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की चीन यात्रा से आपसी व्यापार और निवेश संबंधों की गति में तेज़ी आई। 2000 से 2005 के बीच की इस अवधि में लेखक पूर्वी चीन के महावाणिज्य दूत के रूप में शंघाई में तैनात थे। आपसी आर्थिक सहयोग की दृष्टि से यह सबसे आशाजनक चरणों में से था तथा भारत की प्रमुख आईटी कंपनियां तथा बड़ी दवाई कंपनियां तथा विनिर्माण कंपनियां चीन के विभिन्न स्थानों में अपने परिसर खोल रही थीं।

2003 की यात्रा के समय ही वाजपेयी ने सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग पर आयोजित पहले शंघाई सम्मेलन को संबोधित किया था। उन्होंने भारत और चीन की आईटी कंपनियों के बीच सामरिक सहयोग पर ज़ोर दिया और कहा कि वे अपनी-अपनी शक्तियों को मिलाकर इस्तेमाल करें। आज उनका यह विचार आदर्शवादी लग सकता है, क्योंकि कुछ क्षेत्रों में मौजूद मतभेद भारत-चीन संबंधों में बाधक बने हुए हैं। यह नोट करना भी जरूरी है कि 2025 में आपसी संबंधों के तनाव में आई कमी के साथ ही चीन ने कृत्रिम मेधा (एआई) के वैश्विक मानक तय करने सहित अन्य विभिन्न क्षेत्रों में भारत के साथ आपसी सहयोग बढ़ाने का आह्वान किया है।

तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी (दाएं) 28 जुलाई, 2002 को नई दिल्ली, भारत में एक बैठक के दौरान तत्कालीन अमेरिकी विदेश मंत्री कॉलिन पॉवेल से बात करते हुए

चीन के साथ सीमा-विवाद

2003 की चीन यात्रा का एक अहम पहलू दोनों प्रधानमंत्रियों के विशेष प्रतिनिधियों की व्यवस्था शुरू करके सीमा विवाद पर बातचीत में तेज़ी लाना था। मोटे तौर पर यह एसआर वार्ता तंत्र कामयाब भी रहा तथा कहीं-कहीं अंतराल आने के बावजूद जून, 2020 की गलवान घटना की वजह से उत्पन्न हुए तनाव में कमी आई है तथा इस प्रक्रिया वार्ता के अन्य माध्यमों की भी मदद मिली है।

इस बात पर ध्यान देना भी उचित ही होगा कि 1999 में वाजपेयी के तीसरी बार प्रधानमंत्री चुने जाने के बाद 1993 और 1996 के आपसी सीमा समझौतों का महत्व वास्तविक नियंत्रण रेखा की पुष्टि के बाद काफी बढ़ गया है। दोनों देशों ने मध्य क्षेत्र में एलएसी की अपनी-अपनी धारणा के अनुरूप नक्शे वर्ष 2000 में एक-दूसरे को सौंप दिए थे और उस समय यह लेखक भारत-चीन राजनयिक एवं सैन्य विशेषज्ञ दल में भारतीय पक्ष के नेता थे जिसकी विधिवत् पुष्टि 2002 में की गई थी। लेकिन चीन ने पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों के लिए ऐसी कार्रवाई कराने से मना कर दिया क्योंकि उन क्षेत्रों में मध्य क्षेत्र के मुकाबले मतभेद बहुत ज़्यादा थे।

बहुध्रुवीयता और भारत का उत्थान

श्री अटल बिहारी वाजपेयी में सामरिक दूरदृष्टि थी। उन्हें भारत के महाशक्ति बनने का आभास देश की आर्थिक वृद्धि दरों के तेज़ी से बढ़ने से काफी पहले ही हो गया था। उन्होंने कहा था– ''मैं नहीं सोच सकता कि भारत को शामिल किए बिना इस क्षेत्र की सुरक्षा की कोई भी व्यवस्था प्रभावी हो सकती है।''

उनके मत से एशिया की सुरक्षा, स्थिरता और समृद्धि की व्यवस्था नितान्त आवश्यक थी। वे चाहते थे कि "एशिया ऐसा बने जहां स्थिरता और सुरक्षा को शक्ति से खतरा न हो और ऐसा एशिया न हो जहां कुछ लोग हावी होकर अन्यों को दबाकर रखें।"

आज के हिसाब से बहुध्रुवीय एशिया बनाने की सोच रखते थे। उनकी दृष्टि भविष्यसूचक थी। अब समूचा विश्व समझ चुका है कि हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र में नियमों पर आधारित व्यवस्था कायम करने के लिए भारत को शामिल रखना अनिवार्य है।

अमेरिका के साथ सहयोग

देखा जाए तो एक दृष्टि से शीत युद्ध की समाप्ति के बाद भारत और अमेरिका के बीच निकट सामरिक संबंध वाजपेयी जी की सोच से ही स्थापित हो सके थे। यद्यपि उन्होंने सीधे कुछ नहीं किया पर उनकी यह सोच एकदम स्पष्ट थी कि भारत को अमेरिका के साथ न केवल सहयोग बढ़ाना चाहिए बल्कि पुरानी लीक छोड़कर नए संबंध बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए।

पोखरण-2 परीक्षणों के बाद लगाए कड़े अमेरिकी प्रतिबंधों के बावजूद वाजपेयी अमेरिका के साथ परमाणु वार्ता शुरू करने के लिए फौरन तैयार हो गए। उन्होंने यह कहकर वाशिंगटन को आश्चर्य में डाल दिया था कि हमारे परमाणु परीक्षण अनुचित नहीं थे और भारत और अमेरिका तो 'स्वाभविक सहयोगी हैं।'

जून, 1998 में वाजपेयी ने वरिष्ठ राजनेता जसवंत सिंह को न्यूयार्क और वाशिंगटन भेजकर उन्हें भारत के सामरिक उद्देश्यों के बारे में समझाने और स्थिति का आकलन करने भेजा था। उसी महीने राजनयिक विचार-विमर्श शुरू हो गया जिसमें भारतीय पक्ष की ओर से योजना आयोग के उपाध्यक्ष जसवंत सिंह शामिल हुए जो बाद में विदेश मंत्री बने थे और अमेरिकी पक्ष की ओर से वहां के विदेश उपमंत्री स्ट्रोज टॉलबॉट शामिल हुए थे।

पोखरण परीक्षणों के कारण पैदा हुए तनाव वर्ष 2000 तक समाप्त हो चुके थे। इसके बाद ही 22 वर्ष के अंतराल के बाद अमेरिका के किसी राष्ट्रपति ने पहली बार भारत यात्रा की थी। बिल क्लिंटन की इस यात्रा से पहले जिमी कार्टर 1978 में भारत आए थे। यह विशेष महत्व की बात है कि क्लिंटन की यह यात्रा परमाणु परीक्षणों के 20 वर्ष के भीतर ही हो गई थी।

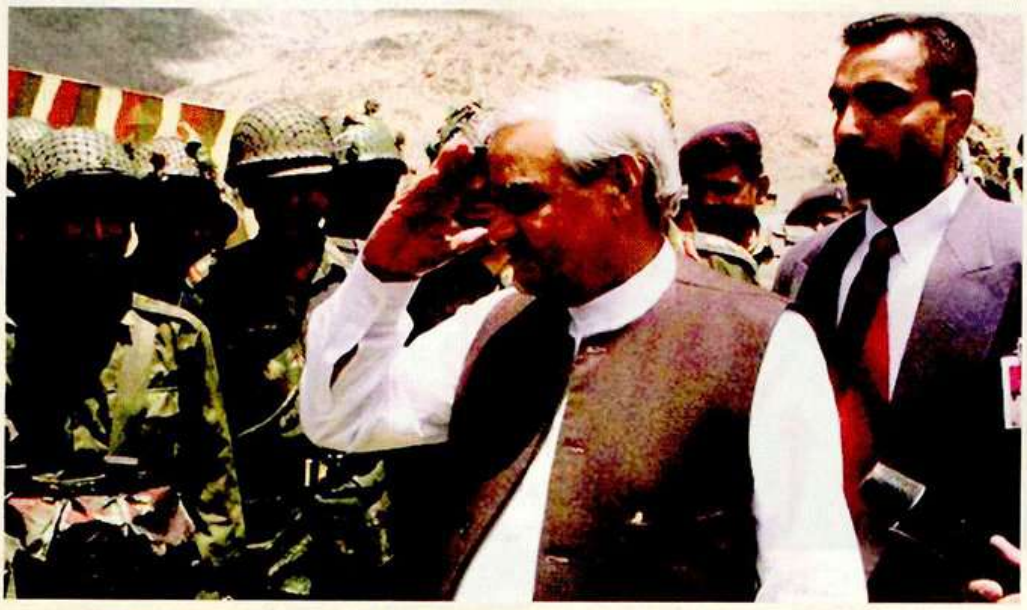

तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी कारगिल में भारतीय सशस्त्रबलों के साथ

2004 में दोनों देशों ने 'सामरिक भागीदारी में भावी उपाय' (एनएसएसपी) समझौते की घोषणा कर दी। यह भारत-अमेरिका सामरिक सहयोग में बड़ी उपलब्धि मानी जाती है क्योंकि इसके तहत दोनों देश चार प्रमुख क्षेत्रों-असैनिक परमाणु ऊर्जा, नागरिक अंतरिक्ष कार्यक्रम, उच्च प्रौद्योगिकी व्यापार और मिसाइल सुरक्षा-में मिलकर काम करने पर सहमत हुए थे जबकि भारत के पास पहले से मौजूद परमाणु

क्षमता सार्थक सहयोग का रूप ले चुकी थी और अब यह किसी तरह की बाधा नहीं रह गई थी।

आत्मनिर्भरता और आत्मरक्षा

वाजपेयी की सामरिक सोच के कुछ अहम पहलू ऐसे हैं, जो आज के संदर्भ में भी सामयिक हैं जबकि भारत बड़े सत्ता द्वंद्वों तथा व्यापार और प्रौद्योगिकी को हथियार बनाने के हलचल भरे विश्व में अपनी जगह बनाता जा रहा है।

पहला पहलू तो आत्मनिर्भरता का पहलू है जिसमें रक्षा क्षेत्र की आत्मनिर्भरता भी जुड़ी है। 1999 में अग्नि-2 मिसाइल के प्रायोगिक प्रक्षेपण के बाद राष्ट्र के नाम अपने संदेश में उन्होंने स्पष्ट कहा था कि वे भारत को सामरिक क्षेत्र में पूरी तरह आत्मनिर्भर देखना चाहते हैं। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के निदेशकों के 24वें सम्मेलन में 6 अगस्त, 1999 को दिए भाषण में उन्होंने मिसाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स, विमान, टैंक, बख्तरबंद गाड़ियों और जहाजों से संबद्ध प्रौद्योगिकी को देश में ही विकसित करने पर बधाई दी थी। वाजपेयी का दृढ़ विश्वास था कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा रक्षा क्षेत्र के लिए देश में ही सुविधाएं विकसित कर लेने के बाद हमें प्रौद्योगिकी के लिए विकसित देशों की दया पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी 22 जुलाई, 2000 को नई दिल्ली स्थित अपने कार्यालय में तत्कालीन चीनी विदेश मंत्री तांग जियाक्सुआन से मुलाक़ात करते हुए

आज, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत रक्षा उत्पादन, अहम प्रौद्योगिकियों और आपूर्ति श्रृंखलाओं के लिए आत्मनिर्भर होकर अपना महत्व सिद्ध कर रहा है। भारत घरेलू क्षमताओं का निर्माण करने तथा विश्वस्त सहयोगियों से सहयोग बढ़ाने में लगा है। जैसा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 79 में स्वाधीनता दिवस पर अपने संबोधन में लड़ाकू विमान का स्वदेशी इंजन बनाने का राष्ट्रीय मिशन शुरू करने की बात कही थी। ऑपरेशन सिंदूर ने नेटवर्क केंद्रित युद्ध में स्वदेश में निर्मित हथियारों और उपकरणों की सफलता का महत्व उजागर किया है।

वाजपेयी ने परमाणु खतरे के बावजूद कारगिल युद्ध का निर्णायक फैसला लिया था। उन्होंने 1999 के कारगिल युद्ध में आक्रमणकारी पाकिस्तानी सेनाओं पर भारतीय सेनाओं की पूरी ताकत से बढ़ने का आदेश दिया था जबकि उस समय भारत और पाकिस्तान दोनों ही परमाणु संपन्न देश थे। मोदी ने भी 2016, 2019 और फिर हाल के ऑपरेशन सिंदूर में पाकिस्तान की परमाणु हथियारों की भभकी के बावजूद भारतीय सशस्त्र बलों को सीमा पार निर्णायक कार्रवाई का आदेश दिया था। असल में भारत का यह नया रुख वाजपेयी काल के बाद ही आया है और अब तो यह काफी उग्र एवं प्रभावी रूप ले चुका है। उरी क्षेत्र में 2016 में सेना के शिविर पर हुए आतंकी हमले के बाद विशेष बलों की सर्जिकल स्ट्राइक से लेकर 2019 में पुलवामा में अर्धसैनिक बलों के काफिले पर आतंकी हमले के बाद पाकिस्तान के काफी भीतर बालाकोट के आतंकी ठिकाने पर भारतीय वायुसेना की बमबारी तक भारत के सैन्य सिद्धांत की अब नई परिभाषा सामने आई है।

वाजपेयी जानते थे कि भारतीय सेना कारगिल में एलओसी पार नहीं करेगी। इधर भारत ने अब साफ कर दिया है कि वह आतंकवादी नेटवर्कों को खत्म करने के लिए दंडात्मक कार्रवाई करने में भी नहीं हिचकिचाएगा। वास्तव में ऑपरेशन सिंदूर के बाद नव-सामान्य स्थिति यही है कि पाकिस्तान की ओर से किसी भी आतंकी हमले के जवाब में आतंकवादियों और पाकिस्तान में उनके समर्थकों पर कड़ी सैन्य कार्रवाई की जाएगी।

साथ ही, वाजपेयी की भांति ही प्रधानमंत्री मोदी ने भी विदेश नीति में व्यावहारिकता और यथार्थवाद की क्षमता अपनाई है। उनकी यह पहल क्षेत्रीय शांति और स्थिरता तथा 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास' के दृढ़ संकल्प पर आधारित है। 2014 में कार्यभार संभालने के तुरंत बाद मोदी पाकिस्तान गए थे। असल में तो उन्होंने अन्य एशियाई नेताओं के साथ प्रधान मंत्री नवाज़ शरीफ को भी अपने शपथ ग्रहण समारोह में आमंत्रित किया था। वाजपेयी की भांति ही मोदी भी दिसम्बर, 2015 में लाहौर गए थे लेकिन पाकिस्तान ने वाजपेयी की तरह ही मोदी को भी खाली हाथ लौटा दिया।

मौजूदा एनडीए-2 सरकार के फैसलों में भी प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता के प्रति अटल बिहारी वाजपेयी का दृढ़ संकल्प झलकता है। असल में मोदी सरकार 2019 में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त करके भारत की प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा की दिशा में एक कदम आगे निकल गई है। इस फैसले से कश्मीर राष्ट्रीय प्रगति की मुख्य धारा का अंग बन चुका है। फिर, मोदी सरकार ने अवैध कब्ज़े वाले भारतीय क्षेत्र को वापिस हासिल करने के प्रति दृढ़ संकल्प व्यक्त किया है। ❑